युगलागुलीय

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

स्त्रीशिक्षा का एक सुलभ आभूषण ।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध औपन्यासिक "श्रीयुत बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय" प्रणीत एक अल्प गल्प का मर्मानुवाद

अनुवादक

(सलटौआ, ज़िला बस्ती, निवासी)

श्रीयुत रुद्रनारायण [illegible]

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१४

Printed and published by Apurva Krishna Bose at the
Indian Press, Allahabad.

सूची

निवेदन

आर्य्यभाषान्तर्गत केवल वङ्ग भाषा ही का साहित्य ऐसा है कि अभी हिन्दी के प्रेमीगण उससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यह विषय सन्तोषजनक है कि हिन्दी के प्रेमियों ने अपनी भाषादेवी को माधवीकंकण इत्यादि आभूषणों से भूषित करने का प्रयत्न कर लिया है। यद्यपि मैं यह कह नहीं सकता कि मेरी यह दो अँगूठियाँ भी सर्वगुण-आगरी नागरी की शोभा को बढ़ावेंगी या नहीं, परन्तु यह विचार करके सन्तोष होता है कि मैंने इसे बाबू वंकिम-चन्द्र के "युगलांगुलीय" के नमूने को सामने रख कर गढ़ा है। यदि इस खैंचातानी में कुछ कसर रह गई हो तो पाठकगण यह विचार कर क्षमा करेंगे कि यह पहला अभ्यास है।

प्रयाग	विनीत
३०, वृष, सं० १९६७ वि०	रुद्रनारायण

परिचय

पाठकवृन्द ! यह प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा सन्तोष होता है कि, यद्यपि यह पुस्तक पहले पहल लिखा गया था और सम्भव था कि अरुचिकर हो ; परन्तु हिन्दी-प्रेमियों ने बड़े उत्साह से इसे पढ़ा और दोही वर्ष के भीतर प्रकाशक को फिर छपवाना पड़ा। इस वार कुछ संशोधन भी कर दिया गया है।

इस अवसर में मैंने बाबू रमेशचन्द्रदत्त के देश-प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात" का भी अनुवाद किया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों से केवल इतना ही अनुरोध है कि यदि "महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात" के पढ़ने से आपको देशभक्ति, स्वकर्तव्यपालन और राजनीति से विशेष प्रेम अवश्य हो जायगा क्योंकि महाशय दत्त लिखते हैं कि "यदि इसके पढ़ने से लोगों में देशभक्ति का अँकुर न जम जाय तो भविष्य में मैं लिखना छोड़ दूँ"। परन्तु मैं इसके अनुवाद करने में कहाँ तक सफलीभूत हुआ हूँ; यह उदार पाठकों की कृपा पर अवलम्बित है।

कर्नलगंज-प्रयाग
१८ वीं जनवरी १९१४ ई०

निवेदक
रुद्रनारायण

युगलांगुलीय

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

प्रथम परिच्छेद

बालपन का प्रेम



दो मनुष्य लता-मंडप के नीचे खड़े थे। वह मंडप ताम्रलिप्ति नगरी का है। ताम्रलिप्ति नामक प्राचीन नगरी समुद्र के तट पर बसी थी। जब समुद्र में ज्वार-भाटा आता था तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानों समुद्र की लहरें इस पवित्र नगरी के चरण धोना चाहती हैं।

ताम्रलिप्ति की एक विचित्र अट्टालिका समुद्र के तट पर बनी हुई थी पास ही एक सुन्दर वाटिका भी थी। इस मनोहर उद्यान का स्वामी नगर का प्रसिद्ध जौहरी सेठ धनदास था। धनदास की एक मात्र सन्तान हिरण्मयी लता-मंडप के बीच में खड़ी हुई एक पुरुष से कुछ बातें कर रही थी।

हिरण्मयी को स्वामी के लाभार्थ ११ वर्ष की अवस्था से ही समुद्र-तीरवासिनी सागरेश्वरी नाम्नी देवी की पूजा करते हुए ५ वर्ष व्यतीत हो गये हैं। अब वह षोडशवर्षीया है, किन्तु मनोरथ अभी तक सफल नहीं हुआ। प्राप्तयौवना कुमारी का एकान्त में किसी युवा पुरुष से बात चीत करना उचित नहीं, किन्तु हिरण्मयी जिस युवक से वार्तालाप कर रही है वह उस का पूर्वपरिचित है। जब वह केवल चार वर्ष की बालिका थी तभी यह युवक ८ वर्ष का था। युवक का नाम पुरन्दर था। पुरन्दर का पिता शचीसुत धनदास का पड़ोसी था। इसी लिए ये दोनों साथ ही खेला-कूदा करते थे। कभी शचीसुत के घर और कभी धनदास के घर इन का सम्मिलन हो जाया करता था।

यद्यपि इस समय हिरण्मयी सोलह वर्ष की और युवक पुरन्दर बीस वर्ष का है, तथापि बाल्यावस्था का प्रेम परस्पर दृढ़ है। केवल बीच में एक विघ्न उपस्थित हो गया था अर्थात् 'धनदास और शचीसुत चाहते थे कि इन युवक-युवती का परस्पर विवाह हो जाय।' विवाह का दिन भी निश्चित हो गया था, परन्तु अकस्मात् हिरण्मयी के पिता ने कहा कि "मैं विवाह न होने दूँगा"। बस, उसी समय से हिरण्मयी फिर पुरन्दर के साथ नहीं मिल सकती थी।

आज पुरन्दर ने बड़ी नम्रता के साथ एक आवश्यक काम का बहाना करके उसको बुला भेजा था।

हिरण्मयी घर से निकल उस लता-मंडप में आकर बड़ी नम्रता से पूछने लगीः—"कहो, मुझे किस लिए बुलाया है? अब मैं लड़की नहीं हूँ, इस कारण यहाँ तुम्हारे साथ बात-चीत करना उचित नहीं। अब कभी तुम्हारे बुलाने पर मैं न आऊँगी"।

षोडशी बालिका कहती है—"मैं अब लड़की नहीं" यह बात भोलेभालेपन की दशा में कही गई थी, परन्तु वहाँ पुरन्दर के अतिरिक्त दूसरा कोई और न था जो इस स्वच्छ-हृदया की बातों पर विचार करता। पुरन्दर अपनी धुन में ऐसा मस्त हो रहा था कि उसको इन बातों के समझने का विचार कहाँ?

पुरन्दर ने लता-मंडप में लगे हुए गुलाब से एक फूल तोड़ कर उसकी पंखड़ियाँ नोचते नोचते कहा—"अब मैं फिर न बुलाऊँगा। मैं दूर देश जा रहा हूँ। केवल यही कहने आया था"।

हिरण्मयी—दूर देश! कहाँ?

पुरन्दर—सिंहल।

हि०—सिंहल! यह क्यों? सिंहल क्यों जा रहे हो?

पु०—क्यों जाऊँगा? हम जाति के सेठ हैं। वाणिज्य-व्यापार करना हमारा धर्म है, बस इसी लिए जा रहा हूँ।

पुरन्दर ने उत्तर तो दे दिया, परन्तु उसकी आँखें डबडबा आईं। हिरण्मयी भी अनमनी सी हो गई। उसकी जिह्वा थोड़ी देर के लिए बन्द हो गई। पुरन्दर की ओर से आँखें फेर कर वह समुद्र की उठती हुई लहरों को देखने लगी। प्रातःकालीन सुखप्रद पवन चल रहा था, वायु के चलने से सूर्य्य की किरणें समुद्र-जल पर पड़ कर लालिमा का सागर बना रही थीं। नीली नीली लहरें अनोखी छटा से ऊपर उठ रही थीं। उज्ज्वल फेन अपनी अलग ही बहार दिखा रहे थे, तीर तीर पर जल-पक्षी कलरव कर रहे थे। उठती हुई चिड़ियों के समूह आकाश-मंडल में उज्ज्वल तरंगों का समुद्र बहा रहे थे। हिरण्मयी यह सब देखती रही। उसने पानी को देखा, फेन-मयी तरंगों का अवलोकन किया, नीले आकाश में उड़ते हुए पक्षियों पर भी दृष्टि-पात किया, फिर एक एक शुष्क फूल की बिखरी हुई पंखड़ियों को देख कर कहा—"तुम क्यों जाओगे? वहाँ तो तुम्हारे पिताजी जाया करते थे?"

पुरन्दर ने उत्तर दिया—"मेरे बाप बूढ़े हो गये हैं। अब कारबार करने की मेरी बारी है, और यही पिता की अनुमति भी है।"

हिरण्मयी ने लता-मंडप के एक झुके हुए वृक्ष की डाली पर अपना सिर रख दिया। पुरन्दर ने देखा कि उसका ललाट संकुचित हो गया, अधर फड़क रहे हैं, नासिका पर

सफ़ेदी आ रही है और साथ ही आँखों से आँसू भी निकल रहे हैं।

पुरन्दर ने मुख फेर लिया। उसने भी हिरण्मयी की भाँति ऊपर, नीचे, नगर, समुद्र, इधर उधर सभी कुछ देखा, परन्तु किसी से संतुष्ट न हुआ। आँखों से अश्रुधारा निकल ही पड़ी। बड़ी कठिनता से आँखें मीच कर बोला—"मैं एक बात कहने आया था—जिस दिन तुम्हारे बाप ने यह कहा था कि अब मेरे साथ तुम्हारा विवाह न होगा; उसी दिन से मेरी इच्छा सिंहल जाने की हुई। अब मैं वहाँ से लौटने वाला नहीं। हाँ, यदि तुम्हें भूल गया तो सम्भव है कि चला आजाऊँ। मैं अधिक बातें बनाना नहीं जानता। तुम भी इससे अधिक न समझ सकोगी। यह समझो कि हमारे लिए समस्त संसार एक ओर, और तुम एक ओर। नहीं नहीं जगत् भी तुम्हारे तुल्य नहीं।" इतना कह पुरन्दर पीछे की ओर लौट एक पेड़ के पत्ते नोचने लगा। जब उसके आँसू कुछ थम गये तब हिरण्मयी के पास आकर फिर कहने लगा—"मैं जानता हूँ, तुमको मेरे साथ प्रेम है, परन्तु एक दिन वह आने वाला है कि जब तुम किसी अन्य की पत्नी बनोगी। अतएव तुम अब मुझको अपने मन से भुला दो, जिससे कि इस जन्म में हमारा तुम्हारा फिर साक्षात् न हो।" यह कह कर पुरन्दर वहाँ से चला गया। परन्तु हिरण्मयी वहीं बैठ कर बिलखने लगी; और मन ही मन सोचने लगी कि, यदि "मैं आज ही मर

जाऊँ तो क्या पुरन्दर का सिंहल जाना बन्द हो जायगा? मैं गले में रस्सी बांध कर क्यों नहीं मर जाती—समुद्र में डूब क्यों न जाऊँ?" परन्तु कुछ और विचार करके उसने कल्पना की कि यदि मैं मर भी जाऊँ तो फिर पुरन्दर चाहे सिंहल जाय या न जाय; उसके जाने अथवा न जाने से मुझे क्या?"

द्वितीय परिच्छेद

फलित ज्योतिष

किसी को धनदास की इस बात का—हम पुरन्दर के साथ हिरण्मयी की शादी न करेंगे—पता नहीं था और न उसने अपनी लड़की ही से इस विषय में कुछ कहा था; किन्तु जब कोई इस विषय में पूछता तो वह यही कह कर टाल देता कि "कोई न कोई कारण होगा"। बहुत लोगों ने हिरण्मयी की शादी के लिए उपहार भेजे, परन्तु उसने किसी की नहीं सुनी। वह सबको यही उत्तर देकर टाल देता कि गुरु महाराज की इच्छा—जो वह चाहें करें—उन्हीं के आने पर इसका निपटारा होगा"।

पुरन्दर सिंहल चला गया। उसको सिंहल गये हुए दो वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो गये। परन्तु पुरन्दर वापिस नहीं आया। हिरण्मयी की शादी भी अभी तक किसी के साथ नहीं हुई। अब वह १८ वर्ष की हो गई। वह धनदास के गृह की ज्योति समझी जाती थी और सारा घर उसी से प्रकाशित था।

विवाह न होने के कारण हिरण्मयी को किसी प्रकार का दुःख भी नहीं था। जब कभी विवाह-संबंधी वार्त्ता होने लगती तब उसी के साथ पुरन्दर का भी स्मरण हो जाता। पुरन्दर

का नाम सुनते ही हिरण्मयी का मुखमंडल मलिन हो आता और वह रोमांचित होकर स्तब्ध रह जाती। लाख यत्न करने पर भी उसकी आँखों से दो एक बूँद आँसू टपक ही पड़ते। परन्तु उसका पिता पुरन्दर के साथ शादी करने से इनकार कर चुका था, इसलिए हिरण्मयी विवाह-विषयक और अधिक शोच नहीं करती; और अपने को जीते जी ही मरी हुई समझती थी। वह कभी कभी यह विचार अवश्य किया करती थी कि बाप ने क्यों अब तक मुझे घर में बिठा रक्खा है; परन्तु इसी के साथ उसको सन्तोष भी हो जाता था कि चलो भला हुआ अब विवाह न होगा। हठात् एक दिन घर में फिर कुछ विवाह के विषय में चर्चा होने लगी, परन्तु किसी ने कुछ स्पष्ट रीति से कहा नहीं।

धनदास के पास चीन देश की बनी हुई एक बहुत अच्छी पिटारी थी। उसमें उसकी स्त्री अपने आभूषण रक्खा करती थी। एक दिन धनदास कोई नया गहना बनवा कर लाये और उसे अपनी स्त्री को सौंप स्वयं कहीं बाहर चले गये। धनदास की स्त्री ने अपनी लड़की हिरण्मयी को बुला कर कहा "ले बेटी इन गहनों को यत्न के साथ रख। यह मेरे किस काम आयेंगे"। जब हिरण्मयी अलग जाकर आभूषणों को गिन गिन कर रखने लगी तब उसको उसके भीतर एक फटा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा दिखाई दिया। हिरण्मयी लिखना पढ़ना जानती थी। वह उसमें अपना नाम लिखा

हुआ देखते ही उस काग़ज़ को पढ़ने लगी। एक बार के पाठ से उसका कुछ अर्थ प्रकट नहीं हुआ। फिर उसने उसको एक बार और पढ़ा; पढ़ते ही उसका कलेजा धक से हो उठा। पत्र आधा था, इसलिए पूरा पूरा अर्थ विदित न हुआ, परन्तु जो कुछ पढ़ा गया वह यह थाः—

ज्योतिर्णय गणना की गई	... ...
हिरण्मयी के तुल्य सोने की मूर्ति	... ...
विवाह होने पर भयानक विपद	... .
परस्पर का साक्षात्	... ...
हां हो सकता है	... ...

हिरण्मयी किसी भावी विपद् की आशंका करके सहम गई। परन्तु उसने किसी से कुछ न कह कर स्वयं ही पत्र-खंड को बड़े यत्न के साथ रख दिया।

तृतीय परिच्छेद

गुपचुप विवाह

दो वर्ष बीत जाने पर अब तीसरा वत्सर आया। वह भी व्यतीत हो गया, तथापि पुरन्दर के सिंहल से आने की कोई आशा नहीं पाई गई, और न उसने किसी के पास पत्र ही लिखा; परन्तु हिरण्मयी के हृदय में उसकी मूर्ति ज्यों की त्यों विराजमान थी और वह कभी कभी विचार करके यही निश्चित करती कि "पुरन्दर भी मुझे भूला नहीं" नहीं तो वह अवश्य वापस आ जाता।

इस भाँति दो और एक तीन वत्सर हो गये। अकस्मात् एक दिन धनदास ने कहा—"चलो काशी चलें। गुरुजी ने अपने चेले से बुला भेजा है। गुरु महाराज की आज्ञा है कि शीघ्रही चले आओ। वहाँ हिरण्मयी का विवाह भी करना है। वर इत्यादि गुरु महाराज ने स्वयं ही ठीक कर लिया है"।

धनदास पत्नी और कन्या को साथ लेकर काशी जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने अपने गुरु आनन्द स्वामी के दर्शन किये, तथा गुरु की आज्ञानुसार शास्त्रोक्त विवाह के दिन भी निश्चित कर लिये।

विवाह के सारे शुभ कार्य्य शास्त्रानुसार किये गये, परन्तु धनदास के अतिरिक्त और किसी को कानोंकान पता नहीं

चला और न किसी प्रकार की धूम धाम ही की गई।

विवाह-दिन की सन्ध्या के एक पहर रात जाने पर, जब लग्न-काल आया तब भी, घर में घरवालों के अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य नहीं था; न कोई भाई था, न बन्धु और न संबंधियों ही में से कोई आया। धनदास को छोड़ और किसी को यह भी पता नहीं था कि विवाह किस के साथ होगा, वर कहाँ का रहनेवाला है, कैसा है, और क्या कारबार करता है।" परन्तु सबको इस विषय पर विश्वास था कि "आनन्द स्वामी ने वर ठीक किया है, इसलिए जो कुछ होगा वह सब भला ही होगा," परन्तु शंका अवश्य थी। विवाह का विषय और इस प्रकार से गुप्त ! गुरु के कार्य में सबको श्रद्धा थी, अतएव किसी को दम मारने का साहस न हुआ। पुरोहित कन्यादान की सभी सामग्री लिये हुए वेदी पर डटा था। धनदास लड़के की प्रतीक्षा कर रहा है, और घर में लड़की को सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित कर रक्खा है। हिरण्मयी चुपचाप बैठी है। दिल ही दिल में सोचती है "भगवन् ! यह कैसा विवाह है ? शादी है अथवा स्वांग ! कुछ भेद जाना नहीं जाता कि यह कौन सा रहस्य है। यदि मेरा विवाह पुरन्दर के साथ न हुआ तो दूसरे को मैं स्वामी कैसे कहूँगी ! मेरा प्राणनाथ तो पुरन्दर ही है।"

ठीक उसी समय धनदास हिरण्मयी को बुलाने आया। किन्तु मंडप में चलने के पहले ही उसने हिरण्मयी की दोनों

आँखें कपड़े से कस कर बाँध दीं। हिरण्मयी ने तब कहा "यह क्या है? पिता जी!" धनदास ने उत्तर दिया, गुरु जी की यही आज्ञा है कि इसी दशा में तुम्हारा विवाह किया जाय, तुमको वहाँ कुछ भी बोलने की आज्ञा नहीं, मंत्र भी मन ही मन पढ़ना होगा।" यह सुन कर हिरण्मयी कुछ न बोली। और धनदास दृष्टिहीना कन्या का हाथ थाँम कर मंडप तक ले गया।

हिरण्मयी चाहती थी कि देखें मेरा पति किस रंग रूप का है और क्या उसकी आँखें भी बँधी हैं परन्तु उसको ऐसा करने का साहस न हुआ। इसी रूप में उसका विवाह भी हो गया। उस समय केवल पुरोहित और कार्य्यकर्त्ता के अतिरिक्त अन्य कोई न था। जब कन्यादान हो चुका, आनन्दस्वामी ने गंभीर भाव से इस दम्पति को संबोधन किया और उन्होंने कहा "सुनो; तुम लोगों का विवाह हो गया, तुम परस्पर पति-पत्नी होकर भी किसी ने एक दूसरे को नहीं देखा। इस विवाह का मूल कारण यही था कि कन्या सदैव कुमारी न बनी रहे; इस जन्म में परस्पर मिलाप हो सकेगा अथवा नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, यदि सम्मिलन हुआ भी तो एक दूसरे को पहचान नहीं सकेगा। अतएव हमने एक यत्न सोच रक्खा है। हमारे पास एक सी ही बनी हुई सोने की दो अँगूठियाँ हैं। दोनों तोल, भाव और आकार में समान हैं। ऐसी अँगूठियाँ और कहीं नहीं पाई

जा सकतीं। इसको भीतर के नगीने में एक एक सोने की मूर्तियाँ बनी हैं, जिनमें से एक एक तुम लोगों को देता हूँ—इन मूर्तियों को अन्य कोई भी बना नहीं सकता। यदि कन्या किसी के हाथ में ऐसी अँगूठी देखे तो वह समझ ले कि यह मेरा पति है। और यदि वर किसी स्त्री के हाथ में ऐसी अँगूठी देखे तो वह समझ ले कि यही मेरी स्त्री है। तुम दोनों में से कोई भी इस अँगूठी को अपने पास से अलग न करना और आपत्ति से आपत्ति काल में भी इसे किसी को मत देना। इसके अतिरिक्त यह भी सुन लो, आज से पाँच वर्ष तक इसको अपने हाथ में न पहनना। आज आषाढ़ महीने की शुक्ला पंचमी है। ११ घटिका रात व्यतीत हुई है। आज से लेकर छटे आषाढ़ की शुक्ला पंचमी को ११ घटिका रात व्यतीत होने पर इसके पहनने की आज्ञा है। इसके पहले पहनने में तुम दोनों का भला नहीं है।"

इतना कह कर आनन्दस्वामी विदा हुए। धनदास ने कन्या की आँखों से पट्टी खोल दी। हिरण्मयी ने आँखें खोल कर जो देखा तो घर में पुरोहित और धनदास के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष नहीं है। उसने ब्याह होने पर भी ब्याह की रात अकेले ही रह कर काटी।

चतुर्थ परिच्छेद

विपद

विवाह हो जाने पर धनदास स्त्री और अपनी कन्या को लेकर अपने देश चले आये। इसके पश्चात् ४ वर्ष और व्यतीत हुए, परन्तु पुरन्दर का कुछ समाचार नहीं मिला और न वह स्वयं सिंहल से वापस आया। वापस आवे अथवा न आवे, हिरण्मयी को अब इससे क्या?

पुरन्दर ७ वर्ष तक सिंहल में रहा। हिरण्मयी ने दिल में सोचा—"पुरन्दर अब भी मेरी याद नहीं भूला, इसी कारण वह अभी तक आया नहीं। वह जीवित है या नहीं, इसमें भी संशय है। मुझको अब उसके देखने की इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अब मैं पराई स्त्री हूँ। किन्तु पुरन्दर के साथ बाल्यकाल की मित्रता थी; सुहृद का कौन नहीं भला चाहता?"

धनदास किसी न किसी कारण चिंतित रहने लगा। कुछ काल के उपरान्त चिन्ता-ज्वाला एक दारुण-रोग की दशा में फूट चली। बहुतेरे औषधि-जल से सिंचन किया गया, परन्तु सभी व्यर्थ हुआ। अन्त में "भस्मान्तꣳ शरीरम्" चरितार्थ हुआ। धनदास की पत्नी उसके साथ सती होने

को चली, हिरएमयी चरण पकड़ कर रोने लगी और कहती थी कि "माता ! मैं अकेली हूँ । अब संसार में मेरा और कौन है। मेरी ओर देखो। यह तुम्हारी कन्या किस भाँति अपना जीवन-निर्वाह करेगी? अब हा—" यह कह कर हिरएमयी धाड़ें मार मार कर रोने लगी, परन्तु उसकी माता ने कहा—"बेटी, पुरुष अपनी स्त्री का जीवनाधार है। यह शरीर उसी का है और उसी के साथ इसको भस्म हो जाना चाहिए"। यह अभी 'यह' को अपनी जिह्वा से भली प्रकार स्पष्ट न कर सकी थी कि हँसती हँसती अपने स्वामी की चिता पर जा बैठी। और अग्निदेव ने सहर्ष उसको उसके पति की अनुचरी बना दिया। धन्य है देवी धन्य !

हिरएमयी जब पहले उसका पैर पकड़ कर रो रही थी तभी उसकी माता ने कहा था कि "बेटी तुम कातर क्यों होती हो। यद्यपि मैं भी अब संसार में न हूँगी तथापि तुम्हारा एक स्वामी अवश्य है। समय आने पर उससे तुम्हारा साक्षात् होगा। तुम अब बालिका नहीं हो; तुम्हारे पास धन-दौलत बहुत है। शोच किस विषय का?"।

परन्तु माता की दिलाई हुई धन की आशा निष्फल हुई। धनदास के मरने पर यह हुआ कि उसने कुछ भी अपने पीछे नहीं छोड़ा। कारण यह था कि धनदास का कारबार कुछ दिनों से बिगड़ गया था। उसके प्रयत्न करने पर भीफिर न सुधर सका और इसी शोक में वह मर भी गया। बने के

सभी साथी हैं। जब महाजनों को यह पता लगा कि "धनदास अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ मरा" तब सबके सब उसके घर पर आये और ऋण चुकाने की बात करने लगे। हिरण्मयी ने कहा, "तुम लोगों की बात सत्य है।" उसने घर की सारी वस्तुओं को बेंच कर, यहाँ तक कि घर भी न बचा, महाजनों का ऋण चुका दिया। अब रहने के लिए हिरण्मयी के पास घर भी नहीं है। इसी दुःख के कारण वह दुःखिनी नगर के बाहर एक कुटी में वास करने लगी। अब हिरण्मयी को केवल आनन्दस्वामी के और किसी से सहायता पाने की आशा नहीं रही। दुर्भाग्यवश स्वामी जी भी बाहर कहीं दूर देश गये हुए थे। कोई मनुष्य भी ऐसा नहीं मिलता था कि जिसको भेज कर वह गुरु महाराज से सहायता ले सके। सत्य है:—

दिनन के फेर सों सुमेरु होत माटी को।
वैरी निज बाप होत साँप होत साँटी को॥



पञ्चम परिच्छेद

दरिद्रता

हिरण्मयी जैसी युवती और सुन्दरी को एक फूस की कुटी में अकेला रहना उचित नहीं था। यद्यपि संसार में युवावस्था और सौन्दर्य्य प्रशंसनीय है, तथापि इन्हीं के कारण विशेषतः स्त्रियों पर आपदायें भी पड़ा करती हैं। अमला नामक एक ग्वालिन हिरण्मयी की सहवासिनी थी। वह विधवा थी; उसके एक किशोरवयस्क पुत्र एवं कई एक कन्यायें थीं। ग्वालिन की युवावस्था व्यतीत हो गई थी। पड़ोस के लोगों में वह अपने सदाचारों की बदौलत भक्तिन के नाम से प्रसिद्ध थी। रात के समय हिरण्मयी उसी के घर आकर सो रहा करती थी।

एक दिन हिरण्मयी जब अमला के घर सोने आई तब उसने हिरण्मयी से कहा, "तुमने कुछ सुना है? आठ वर्षों के बाद आज पुरन्दर सेठ अपने घर वापस आये हैं।" यह सुन कर हिरण्मयी ने अपना मुँह फेर लिया, जिससे कि अमला उसके आँसुओं को न देख सके। पृथ्वी की ओर दृष्टि करके हिरण्मयी ने नहीं मालूम क्या क्या सोचा; वह जानती थी कि मैं अभी पुरन्दर के मन से अलग नहीं हुई,

परन्तु उसका लैाट आना सर्वथा इसकी प्रतिकूलता का प्रकाशक हुआ। पुरन्दर उसको दिल में रक्खे या भुला दे, इससे हिरण्मयी को क्या लाभ-हानि? तथापि मनुष्य ही का हृदय था। भला जिसके साथ बचपन से ही स्नेह का वर्ताव रहा हो उसका विस्मरण हो जाना हिरण्मयी को कष्टकर क्यों न होता? पुरन्दर के भूल जाने का हिरण्मयी को बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु वह सोचने लगी—"भला कब तक कोई प्रवास में रहे। जब बाप भी मर जाय तब भला घर द्वार की सुध कौन ले? ऐसी दशा में यदि वह घर न आता तो क्या करता?" यह सोच कर फिर थोड़े काल के लिए स्तब्ध हो गई, परन्तु यह स्तब्धता दीर्घ काल तक न रही और दिल में कहने लगी, "मैं वास्तव में कुलटा स्त्री हूँ, नहीं तो व्याही स्त्री का धर्म कब उसको आज्ञा देता कि वह किसी दूसरे पुरुष का स्मरण करे?"

अमला बोली—"क्यों बेटी! क्या तुमको कभी पुरन्दर याद नहीं आता? वह शचीसुत सेठ का लड़का है"।

हि०—हाँ जानती हूँ।

अ०—वह वापस आया है। न जाने कितनी नौका धन लाया है। इतना धन तो ताम्रलिप्ति नगरी में किसी ने न देखा होगा, उसकी गणना तो कौन करे।

यह सुनकर हिरण्मयी का दिल स्वयं धड़कने लगा, उसको अपनी दारिद्र्य-दशा का विचार हुआ। साथ ही पूर्व सुख-

सम्पन्न दशा भी याद आ गई। दारिद्र्यानल महाज्वाला है। यदि उसका व्याह पुरन्दर के साथ हुआ होता तो आज उसका सारा धन इसी का था। ईश्वर किसी को दरिद्री न करे! ऐसी स्त्री संसार में कहाँ है जिसको धन की इच्छा न हो। हिरण्मयी बहुत देर तक इसी उधेड़बुन में पड़ी रही, परन्तु बात टाल कर अमला से पूछने लगी—"अमला! शचीसुत सेठ के लड़के का विवाह हो गया?"

अमला ने कहा—"ना, विवाह अभी नहीं हुआ"।

इतना सुनते ही हिरण्मयी की इन्द्रियाँ अवश हो गईं। वह इस रात को और कुछ वार्त्ता न कर सकी।

षष्ठ परिच्छेद

प्रलोभन

कई दिनों के पश्चात् अमला ने हिरण्मयी से हँस कर पूछा, "क्यों जी बेटी! क्या तुम्हारा यही धर्म है?"

हिरण्मयी ने घबरा कर कहा, "मैंने क्या किया है? हैं!"

अमला—हमसे तो अभी तक कहा ही नहीं था कि...प्री...

हि०—क्या नहीं कहा था?

अमला—पुरन्दर सेठ के साथ तुम्हारी इतनी प्रीति है।

हिरण्मयी लज्जित हो गई, परन्तु सँभल कर बोली, "हाँ, बाल्यावस्था में वह मेरा प्रतिवासी था, परन्तु अब उसकी क्या बात!"

अमला—क्या वह पड़ोसी ही था या और भी कोई बात थी? देखो मैं यह क्या लाई हूँ।

इतना कह कर उसने एक डिब्बे को खोला और उसमें से हीरों का एक हार निकाला जो कई हज़ार की लागत का था। वह उसे हिरण्मयी को दिखला कर कहने लगी कि "सेठ-पुत्री! हीरा पहचानती हो"? हिरण्मयी ने विस्मित हो कहा, "यह तो बड़े दामों का हार है, इसे तू कहाँ पा गई"?

अमला—इसे पुरन्दर ने तुम्हारे लिए भेजा है। तुम मेरे घर में रहती हो। यह सुन कर मुझे बुला भेजा था और यह उपहार तुम्हारे लिए समर्पण किया है।

हिरण्मयी ने सोचा, इस हार को लेलेने से सदा के लिए दारिद्र्य-मोचन हुआ जाता है। धनदास की लड़की पर ऐसी विपत्ति कभी नहीं पड़ी थी। इसलिए हिरण्मयी थोड़ी देर क्षोभ में आ गई। परन्तु दीर्घ सांसें लेकर कहने लगी, "अमला! तुम सेठ-पुत्र से कहना कि वह किसी प्रकार इसे नहीं ले सकती"।

अमला डर गई। कहने लगी, "यह क्यों? क्या तुम पागल हो गईं हो? अथवा मेरी बातों पर तुम्हें अविश्वास है"?

हि०—मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करती हूँ। पागल भी नहीं हूँ। परन्तु इसे ले नहीं सकती।

अमला ने बहुत कुछ समझाया, ऊँच नीच दिखाया, परन्तु हिरण्मयी ने एक भी न सुना। लाचार अमला हार लेकर राजा मदनदेव के पास गई (वह ताम्रलिप्ति नगरी का स्वामी था) और उसको प्रणाम करके कहा, "यह हार आप ग्रहण करें। यह हार केवल आप ही के योग्य है"। राजा ने हार ले लिया और अमला को बहुत कुछ पारितोषिक देकर विदा किया। हिरण्मयी इस विषय को कुछ भी न जान सकी।

इसके कुछ कालोपरान्त पुरन्दर की एक दासी हिरण्मयी के पास आई और कहने लगी, "हमारे मालिक ने कहला भेजा है कि आप इस पर्णकुटी में वास न करें। यह हमें भला नहीं प्रतीत होता। आप हमारे बाल्यकाल के मित्र हैं; हमारा घर आप ही का घर है। चाहे मेरे घर में आकर रहें अथवा अपने बाप के घर में वास करें, क्योंकि हमने उस मकान को मोल ले लिया है जो आपके अर्पण करते हैं। हमारी यही मनोकामना है"।

हिरण्मयी दरिद्रता के कारण बहुत दुःखी थी, विशेष करके अपने बाप के घर से निर्वासन पर। और कभी कभी उसको यह ध्यान हो जाता कि "आज मैं यदि अपने बाप के घर में होती तो उन स्थानों को देख तो सकती कि जहाँ बाल-क्रीड़ा किया करती थी"। वास्तव में लड़कपन का समय भी अमूल्य होता है। मनुष्य जहाँ खेलता है, जिसके साथ खेलता है, उसको कभी नहीं भूलता। उसी मकान में वह अपने माँ बाप के साथ रहती थी। उसी में उनका देहान्त हुआ। ऐसे भवन से निर्वासित किया जाना वास्तव में महान् दुःख है। घर का नाम सुनते ही वह रो पड़ी, आँखों से आँसू निकलने लगे, परन्तु दासी को आशीर्वाद देकर बोली "मैं इस दान को नहीं ले सकती। परन्तु इस लोभ पर विजय पाना कठिन है। ईश्वर तुम्हारे प्रभु का सर्वप्रकार मंगल करें"।

परिचारिका प्रणाम करके चली गई। परन्तु अमला वहाँ थी। हिरण्मयी ने उससे कहा—"अमला! हमारा तुम्हारा एक जगह का रहना कठिन है। तुम भी हमारे साथ चल कर उसी मकान में रहो"। अमला ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। और वह दोनों धनदास के घर में रहने लगीं।

फिर भी अमला को बार बार पुरन्दर के घर जाते हुए देख कर एक दिन हिरण्मयी ने उसको मना कर दिया और उसी दिन से उसका वहाँ का जाना बन्द करा दिया।

यद्यपि पितृगृह-वास मिल गया, परन्तु एक विषय शोचनीय था। एक दिन अमला ने कहा—"तुम कुछ भी शोच न करो। मेरी नौकरी राजा के महलों में लग गई है और वहाँ की बदौलत अब मुझे अधिक धन की आवश्यकता नहीं रही। अतएव अब तुम निश्चित भाव से घर में रहो"। हिरण्यमयी ने देखा, कि अमला अब रुपये पैसों से भरपूर है। इसलिए उसके मन में अनेक प्रकार की शंका-तरंगें उठने लगीं।

सप्तम परिच्छेद

अवधि

दिन जाते कुछ देर नहीं लगती। व्याह हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। आज पाँचवें आषाढ़ की शुक्ला पंचमी है। हिरण्मयी को अपने व्याह का अवसर स्मरण हो आया। वह संध्या काल ही से उदास होकर बैठी सोच रही थी कि "गुरु महाराज की आज्ञानुसार मैं कल से अँगूठी पहन सकती हूँ; परन्तु उसके पहनने ही से क्या? स्वामी मिले थोड़े ही जाते हैं? हमें पति से मिलने की इच्छा भी नहीं। क्योंकि...छोड़ और किसी को चिरकाल तक हृदयमंदिर में स्थान नहीं" परन्तु थोड़ी देर सँभल कर फिर विचार करने लगी "हँय! मैं क्या कर रही हूँ! अविवाहित पुरुष का चिन्तन! इस विषय के विचार से तो धर्म नष्ट हो जायगा।" हिरण्मयी मन ही मन यह सोच ही रही थी कि बाहर से आकर अमला ने विह्वल स्वर से कहा, "सर्वनाश! मैं नहीं जानती कि क्या होनेवाला है!"

हि०—क्या होगया? कुछ कहो भी तो।

अमला—राज-मंदिर से तुम्हारे ले जाने के लिए एक पालकी आई है। साथ में दास-दासियाँ भी बहुत हैं, जो तुम्हें ले जायँगी।

हि०—अरे तू बावली तो नहीं हो गई। मुझे कोई राज-महल क्यों ले जायगा। मुझसे और राजमहल से क्या संबंध ?

इधर यह बात पूरी भी न होने पाई थी कि राजदूती प्रणाम करके कहने लगी, "राजाधिराज श्रीमान् मदनदेव की आज्ञा है कि तुम हिरण्मयी को पालकी में बिठाकर अभी ले आओ"।

हिरण्मयी सहम गई। इनकार कर नहीं सकती। परन्तु उसने विचार किया कि "राजा के महल में जाने से कोई हानि नहीं—विशेष करके मदनदेव राजा तो बड़ा ही धर्मात्मा एवं जितेन्द्रिय है। उसके प्रताप से कोई राजपुरुष भी किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं कर सकता"।

हिरण्मयी ने अमला से कहा "अमला, मैं राजा के दर्शनों को जा रही हूँ, तुम भी साथ ही चलो न।"

अमला ने स्वीकार किया।

पालकी पर सवार होकर हिरण्मयी राजा के महलों में पहुँची। प्रतिहारी ने राजा से निवेदन किया "महाराज! सेठ की कन्या आगई।" राजा की आज्ञा पाकर प्रतिहारी ने हिरण्मयी को एकान्त में, जहाँ राजा बैठे हुए थे, पहुँचा दिया, परन्तु अमला को वहाँ जाने की आज्ञा नहीं मिली।

अष्टम परिच्छेद

पति की अँगूठी

हिरणमयी राजा को देख कर विस्मित हो गई। राजा दीर्घाकृति पुरुष, चौड़े कपाट, दीर्घबाहु, विस्तृत वक्ष, बड़ी बड़ी आँखोंवाले और सर्वांगपुष्ट स्वयं मदनदेव ही थे। हिरणमयी ने ऐसा सुन्दर पुरुष कभी नहीं देखा था और शायद ही ऐसा पुरुष किसी स्त्री का हो। राजा ने भी सेठ की कन्या को देख कर निश्चय किया कि राजमहलों में तो ऐसी स्त्री अलभ्य है। राजा ने पूछा "तुम हिरणमयी हो"।

हिरणमयी ने कहा "हाँ महाराज, मैं आप की दासी हूँ।"

राजा—जिस लिए तुम्हें बुला भेजा है सो सुनो। क्या तुमको अपने विवाह की कथा स्मरण है ?

हि०—"हाँ महाराज ! याद है।"

राजा—उस रात जो अँगूठी तुम को आनन्दस्वामी ने दी थी क्या वह तुम्हारे पास है ?

हि०—महाराज ! वह अँगूठी है तो सही—परन्तु यह तो बताइए; आप को यह सब कथा कैसे ज्ञात है। मेरी शादी तो बड़ी गुप्त रीति से हुई थी।

राजा ने इसका कुछ उत्तर न दिया। किन्तु उन्होंने कहा—वह अँगूठी कहाँ है ? मुझे दिखा दो"।

हि०—उसे मैं घर पर छोड़ आई हूँ। आनन्दस्वामी की आज्ञा थी कि जब तक पाँच वर्ष पूरे व्यतीत न हो जायँ उस को न पहनना। अभी उसके पहनने के समय में कई घंटों की देरी है।

राजा—बहुत अच्छा, किन्तु उस अँगूठी का एक जोड़ तुम्हारे पति को दिया था। क्या तुम उसको देख कर पहचान लोगी?

हि०—"वह दोनों अँगूठियाँ एकही रूप की हैं। इसलिए देख कर पहचान लेने में कौन बड़ी बात है"।

राजा ने उसी समय अपने नौकर को बुलाया, जब वह आया तब उसे एक सुनहरे डिब्बे के लाने का संकेत किया। राजा ने डिब्बे से एक अँगूठी निकाल हिरणमयी को दे दिया और पूछा "देखो तो यह वही अँगूठी है कि नहीं?"

हिरणमयी ने अँगूठी को हाथ में ले उसे दीपक के सामने विलक्षण रीति से निरीक्षण किया और बोल उठी—"देव! इसमें कोई भी संदेह नहीं, यह मेरे स्वामी की अँगूठी है, परन्तु आपको यह कैसे और कहाँ मिल गई?" फिर कुछ विचार करके कहा, "देव! मैंने जान लिया कि आज से मैं विधवा हूँ। यह असम्भव था कि मेरे स्वामी अपने जीते जी यह अँगूठी किसी और को देते—उनके न होने से यह धन राजा के पास आ गया। ईश्वर-इच्छा! कर्म की गति बड़ी विचित्र है!"

राजा ने हँस कर कहा—मेरी बात का विश्वास करो। तुम विधवा नहीं हो। तुम्हारा स्वामी वर्त्तमान है।

हि०—तो फिर वह मुझ से भी दरिद्र है। धन के लोभ से उसे वेच डाला है क्या ?

राजा—नहीं तुम्हारा स्वामी वहुत भारी धनिक है।

हि०—फिर आप ने छल से यह अँगूठी उनके हाथ से ले ली होगी।

राजा हिरण्मयी की दुःसाहसिक कथा सुन कर विस्मित हो गया। कहने लगा, "तुममें बड़ा साहस है! आज तक किसी ने राजा मदनदेव को चोर नहीं कहा था"।

हिरण्मयी—फिर यह अँगूठी आप के पास कैसे आ गई।

राजा—तुम्हारे विवाह के पश्चात् इस अँगूठी को आनन्दस्वामी ने मेरी उँगली में पहना दिया था।

हिरण्मयी उसी समय लज्जित हो नीचे मुख करके कहने लगी "आर्य्यपुत्र! मैं चपला हूँ। नहीं तो ऐसी कटुवादिनी क्यों होती"।

नवम परिच्छेद

सतीत्व-परीक्षा

हिरण्मयी अपने को राजरानी सुनकर बड़ी विस्मित हो गई। परन्तु कुछ आनन्द प्राप्त नहीं हुआ, और उसका वदन स्थिर हो उठा, सारे शरीर में रोमांच हो आया। दिल में सोचने लगी "मैंने अब तक पुरन्दर को नहीं पाया। ईश्वर ने मुझे पर-पत्नी बना दिया। मेरा हृदय तो पुरन्दर का है, पुरन्दर ही इसके भीतर बसता है। वास्तव में वही मेरा स्वामी है। हाय! मैं किस प्रकार इस महात्मा राजा के घर को कलंकित करूँगी?" हिरण्मयी सिर नीचा किये हुए इसी प्रकार के सोच विचार में मग्न थी कि राजा ने कहा—"हिरण्मयी! तुम सचमुच रानी हो। इसमें कोई भी सन्देह नहीं। परन्तु मैं तुमसे कई एक बातें पूछना चाहता हूँ। तुम बिना दाम दिये हुए पुरन्दर के घर में क्यों रहती हो?"

हिरण्मयी लज्जावश पानी पानी हो गई, और कुछ उत्तर न दे सकी। राजा ने फिर पूछा, "तुम्हारी दासी अमला सर्वदा पुरन्दर के घर क्यों जाया करती है?"

हिरण्मयी और भी लजा गई और विचार करने लगी कि "क्या राजा मदनदेव सर्वज्ञ हैं?"

फिर राजा ने प्रश्न किया, "तुमने परनारी होकर पुरन्दर का दिया हुआ हार क्यों ग्रहण किया था ?"

इस वार हिरण्मयी की जिह्वा खुल गई, उसने उत्तर दिया "आर्य्यपुत्र ! मैं अब तक तुमको सर्वज्ञ जानती रही, परन्तु अब जाना कि तुम सर्वज्ञ नहीं— मैंने उस हार को वापस कर दिया था।"

राजा—वही हार तो तुमने मेरे हाथ विकवाया था ? यह देखो वही हार है न ?

इतना कहकर राजा ने संदूक से हार निकाल हिरण्मयी को दिखलाया। हीरक-हार देख कर हिरण्मयी बड़ी विस्मित हुई और कहने लगी, "आर्य्यपुत्र ! यह हार क्या मैं स्वयं आकर वेंच गई हूँ ?"

राजा—नहीं, तुम्हारी दासी अथवा दूती अमला ने आकर उसको वेंच दिया था। क्या उसको बुलवाऊँ ?

हिरण्मयी के होठों पर कुछ मुसकराहट प्रकट हुई और सिर को नीचे करके बोली, "आर्य्यपुत्र ! अपराध क्षमा कीजिए। अमला को मत बुलाइए। मैं इसका वेंचना स्वीकार करती हूँ ?"

इस वार राजा विस्मित होकर कहने लगे—"फिर किस प्रकार दूसरे पुरुष का उपहार ग्रहण किया ?"

हिरगमयी— मैं कुलटा हूँ महाराज ! मैं आपकी गृहिणी होने योग्य नहीं। मैं प्रणाम करती हूँ। मुझे जाने दीजिए और मेरे साथ का विवाह भूल जाइए।

हिरण्यमयी राजा को प्रणाम करके चलने के लिए उद्यत हुई। उसी समय राजा अकस्मात् ठट्ठा मार कर हँसने लगा। हिरगमयी थोड़ी देर ठहर गई।

हिरगमयी को ठहरी हुई देख राजा ने कहा, "हिरगमयी ! तुम जीती। मैं हार गया। तुम कुलटा नहीं, और न मैं तुम्हारा पति हूँ। जाओ नहीं।"

हिरगमयी—महाराज फिर यह हँसी कैसी—मुझे समझा दीजिए, मैं एक साधारण स्त्री हूँ। मेरे साथ आपकी तरह गम्भीर-प्रकृति राजाधिराज की हँसी ठीक नहीं।

राजा ने कहा—"मेरे सिवा और किसको हँसी शोभा देगी। छः वर्ष हुए जब तुमको धनदास के डिब्बे में एक पत्र मिला था जिसका अर्ध भाग नहीं था ? क्या वह तुम्हारे पास है ?"

हिरगमयी—महाराज ! आप सर्वज्ञ हैं। पत्रार्ध मेरे घर पर है।

राजा—तुम पालकी पर सवार होकर जाओ और घर से उस पत्रार्ध को ले आओ। फिर मैं सारी कथा कह सुनाऊँ।

दशम परिच्छेद

पुनर्मिलन

हिरण्मयी राजा की आज्ञानुसार पालकी पर सवार होकर अपने घर चली गई एवं वही पूर्व-वर्णित पत्रार्ध लेकर पुनः राज-मन्दिर को वापस आ गई। राजा ने इस पत्रार्ध को देख अपने डिब्बे में से एक और पत्रार्ध निकाल कर हिरण्मयी को दिया और कहा "इन दोनों को मिला कर पढ़ो।"

हिरण्मयी ने जब इनको मिला कर पढ़ना आरम्भ किया तब उस समय यह पढ़ा गयाः—

ज्योतिषी गणना की गई	परन्तु यह सम्भव नहीं कि
हिरण्मयी के तुल्य सोने की मूर्ति	दान करने से कभी भलाई हो।
विवाह होने पर भयानक विपद्	का सामना करना पड़ेगा और
परस्पर का साक्षात्	लड़की के प्रति विधवा होने का ग्रह है
हां, हो सकता है	कि वे विवाह काल से ८ वर्ष तक एक दूसरे को कदापि न देखें।

पाठ समाप्त हुआ, राजा ने कहा "यह पत्र आनन्दस्वामी ने तुम्हारे पिता को लिखा था।"

हिरण्मयी—अब मैं समझी कि क्यों विवाह के समय हम

दोनों की आँखों पर पट्टियाँ बाँधी गई थीं और क्यों हमको बोलने की आज्ञा नहीं थी। ५ वर्ष तक अँगूठी न पहनने का कारण भी यही था। परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई विषय समझा नहीं जाता।

राजा—और भी अवश्य समझना चाहिए। इस पत्र को तुम्हारे पिता ने पाकर तुम्हारा पुरन्दर के साथ संबंध करना उचित नहीं समझा था। उधर पुरन्दर भी इस हृदय-भेदी संवाद को सुनकर दुःखी हुआ और इसी कारण वह सिंहल चल दिया।

इधर आनन्दस्वामी के पत्रानुसन्धान ने एक प्रतिष्ठित वर स्थिर करके तुम्हारा जोड़ा मिला दिया। वर की आयु में ज्योतिष-गणनानुसार अट्ठाइसवें वर्ष मृत्यु का भय था—नहीं तो वैसे वह ८० वर्ष तक जीवित रहे। यदि इसके पहले विवाह कर दिया जाता और वह स्त्री-पुरुष की भाँति रहने लगते तो पति अट्ठाइसवें वर्ष मर जाता। अतएव उन्होंने तुम्हारा विवाह एक ऐसे पुरुष के साथ किया है कि जिसकी अवस्था उस समय २३ वर्ष की थी। यद्यपि पाँच वर्ष तक तुमको मिलने का अवसर नहीं दिया गया, परन्तु धनदास की इच्छा थी कि विवाह शीघ्र हो जाय। क्योंकि अधिक काल तक अविवाहित रखने से सम्भव था कि तुम किसी प्रकार चंचला हो जातीं अथवा छिपी रीति पर किसी से विवाह कर

लेतीं, इसी लिए तुम्हें भय दिखाने के हेतु यह पत्रार्ध तुम्हारे गहनों में रख दिया गया था।

इसी कारण विवाह होने के पाँच वर्ष तक तुम्हारा पति के साथ साक्षात् न हो सका और ऐसा प्रबंध किया गया कि एक दूसरे को न जानने पावे। कई महीने हुए, आनन्दस्वामी यहाँ आये थे। उनको तुम्हारी दरिद्रता का वृत्तांत सुन कर बड़ा दुःख हुआ था। इसी कारण वह तुमसे मिल भी नहीं सके। परन्तु उन्होंने मुझसे मिल कर सारा व्योरा यों कह सुनाया, "यदि मुझे हिरण्मयी की दरिद्रता का पता लगा होता तो अवश्य मैं मोचन करता। परन्तु इस समय आप ही इस कार्य्य को करके मुझे वाधित कीजिए। इसके अतिरिक्त इस विषय का भी ध्यान रखिएगा कि वह एक दूसरे से मिलने न पावें।" आनन्दस्वामी ने मुझको तुम्हारे पति के नाम और पता से भी परिचित कर दिया है। जो कुछ तुम को सहायता मिल रही है, वह अमला द्वारा मेरी ही दी हुई है। तुम्हारे घर को मोल लेकर तुम्हारे रहने के लिए मैंने ही संवाद भेजा था। हार भी मेरा ही भेजा हुआ था। यह सब केवल तुम्हारी परीक्षा के निमित्त था।"

हिरण्मयी—फिर यह अँगूठी आपको कहाँ से और कैसे मिल गई और क्यों आपने मेरे सन्निकट पतिभाव को प्रकट कराने की इच्छा की? और क्यों पुरन्दर के घर में रहने की बात छेड़ कर मेरी हँसी उड़ाई?

राजा—जब मुझे आनन्दस्वामी की आज्ञा हो गई, तभी तुम्हारे घर पर मैंने पहरा कर दिया था और ऐसा प्रबंध करा दिया था कि तुम्हारे स्वामी को उधर से जाने का अवसर भी न मिल सके। हमने स्वयं अमला के हाथ हार भेज कर तुम्हारी परीक्षा करानी चाही थी। जब पाँच वर्ष पूर्ण होने को आये, हमने तुम्हारे स्वामी को बुला भेजा और विवाह का सारा संवाद सुना कर कहा था कि आज अँगूठी लेकर ११ घड़ी रात व्यतीत होने पर आना। तुम्हारा तुम्हारी स्त्री के साथ सम्मिलन होगा।" उसने कहा, "महाराज की आज्ञा शिरोधार्य्य, किन्तु स्त्री के साथ मिलने की मुझे स्पृहा नहीं और न उसके मिलने से कुछ लाभ है।" मैंने कहा—"मेरी आज्ञा?" फिर उसने कहा 'महाराज! अब मैं अवश्य आऊँगा।' मैंने उसको भली भाँति समझा दिया था कि "तुम्हारी स्त्री बड़ी धर्मात्मा और सुशीला है। उसके साथ रहने से तुम्हारा अहोभाग्य है।" और इसी प्रकार बात बात में अँगूठी भी माँग ली। अँगूठी देने से वह पहले तो इनकार करता रहा परन्तु अन्त में मान लिया। इस अँगूठी से मैंने तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा भी कर ली।

हिरण्मयी—महाराज! शोक! आपने क्या मेरी परीक्षा की। क्या कोई किसी की परीक्षा... ... ...

अभी यह वाक्य पूरा भी नहीं होने पाया था कि मंगल-सूचक घोरतम बाजे बजने लगे। राजा ने कहा, "चुप रहो

परीक्षा की कथा फिर कही जायगी। इस समय तुम्हारा स्वामी आगया। अब शुभ लग्न में तुम्हारा मिलाप होना चाहिए॥"

हठात् उस कोठरी का किवाड़ खुल गया। एक भद्र पुरुष एवं सुन्दर स्वरूपवान् कमरे के भीतर आगया। राजा ने कहा—"हिरण्मयी! यही तुम्हारे स्वामी हैं।"

हिरण्मयी ने आँख उठा कर देखा। उसके सिर में चक्कर आने लगा—स्वप्न है या साक्षात्—यह तो साथ का खेला पुरन्दर है!

दोनों चित्र-खचित से बन गये! जाग्रत-स्वप्न का भेद नहीं जान सके। एक दूसरे को टकटकी लगाकर देखने के अतिरिक्त और कुछ न बोल सके।

राजा ने पुरन्दर से कहा—"मित्र, हिरण्मयी तुम्हारे योग्य पत्नी है। तुम हमारे घर से अब इनको अपने घर ले जाओ। यह आजीवन तुम्हारी स्नेहमयी भार्य्या होगी। तुम दोनों में परस्पर का प्रेम है। हमने दिन रात पहरा करा के जान लिया है। अपने आपको स्वामी कहके इसकी परीक्षा करली है। इसे राज्य का भी लालच नहीं है। इसने क्षणमात्र के लिए भी तुम्हें नहीं भुलाया है। हिरण्मयी का हृदय मंदिर है। तुम्हारी प्रीति उसमें मूर्ति बन कर वास करती है। मैंने बहुत कुछ लालच दिया, परन्तु हिरण्मयी ने एक भी स्वीकार नहीं किया। सत्यता से कदापि नहीं डिगी। वह अँगूठी को देख

कर कहने लगी "महाराज ! मैं कुलटा हूँ । मुझको छोड़ दीजिए, भूल जाइए ।" यह सब उसको स्वीकार थे, परन्तु वह तुम्हारा ध्यान विस्मृत न कर सकी । मैं शुद्ध हृदय से आशीर्वाद देता हूँ । तुम्हारी जोड़ी सुखी रहे ।

हिरण्मयी—महाराज ! एक और बात समझा दीजिए—यह तो सिंहलद्वीप में थे । काशी में इनके साथ मेरा विवाह कैसे हुआ ? यदि यह सिंहल से आगये थे तो हमको समाचार क्यों नहीं मिला ?"

राजा—आनन्दस्वामी ने पुरन्दर के पिता से परामर्श करके सिंहल को दूत भेजा था । यह केवल बाप की अवज्ञा के भय से काशी चला आया था और विवाहोपरान्त बाहर ही बाहर सिंहल चला गया । यह कार्य्य ऐसी गुप्त रीति से किया गया था कि किसी अन्य को अणुमात्र भी पता नहीं लग सका ।

हिरण्मयी चुप हो गई ।

पुरन्दर ने सिर झुका कर कहा—"महाराज ! आपने जिस भाँति हमारे चिरकाल के मनोरथ को पूर्ण किया है, ईश्वर इसी प्रकार आपके सकल मनोरथ पूर्ण करें । आज हम जिस प्रकार सुखी हैं ईश्वर करें ऐसे ही प्रत्येक जोड़े आपके राज्य में सुख-लाभ करें ।"

1/15 इति ।
